E-ISSN: 2664-603X
P-ISSN: 2664-6021
IJPSG 2024; 6(1): 34-36
www.journalofpoliticalscience.com
Received: 08-10-2023
Accepted: 13-11-2023

राजीव कुमार महतो
शोद्यार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी, विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड, भारत

Corresponding Author:
राजीव कुमार महतो
शोद्यार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी, विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड, भारत

झारखण्ड आंदोलन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

राजीव कुमार महतो

DOI: https://doi.org/10.33545/26646021.2024.v6.i1a.300

सारांश
झारखण्ड आंदोलन अलग राज्य का दर्जा देने की मांग के साथ शुरू हुआ एक सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक आंदोलन था। इतिहास पर दृष्टि डालते हैं तो झारखण्ड यानी छोटानागपुर और संताल परगना क्षेत्र का अपना अलग वजूद रहा है। भौगोलिक, सांस्कृतिक, भाषाई और सामाजिक संरचना की दृष्टि से यह क्षेत्र बिहार तथा बंगाल से भिन्न रहा है। सामाजिक रूप से देखे तो संपूर्ण जनसंख्या का बहुत बड़ा हिस्सा जनजातीय समाज का था तथा जनजातीय समाज की अपनी शासन व्यवस्था थी। इस तरह के जनजातीय समाज ने समय के साथ अपनी शासन व्यवस्था, भाषा, संस्कृति और पहचान को बनाए रखने के उद्देश्य से अलग झारखण्ड राज्य का मांग शुरू किया। प्रस्तुत शोध प्रत्र में झारखण्ड आंदोलन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला गया है, साथ ही शोध प्रत्र को सटिक और विश्वसनीय बनाने के लिए द्वितीयक आँकड़ो का सहायता लिया गया है।

कूटशब्द : झारखण्ड, आंदोलन, संस्कृति।

प्रस्तावना

झारखण्ड आंदोलन की पृष्ठभूमि

झारखण्ड का ऐतिहासिक एवं सांस्कृति परिप्रेक्ष्य को देखें तो पता चलता है कि मुगलों के शासन के प्रारंभिक काल में झारखण्ड में कई छोटे–मोटे शासकों के राज्य थे। जिसमें प्रमुख पलामू के रक्सेल, कोकरा के नागवंशी और सिंहभूम के सिंहवंश थे। इस समय संपूर्ण पर्वतीय इलाका 'झारखण्ड' के नाम से ज्ञात था। इस तथ्य की पुष्टि अकबर के राजदरबारी अबुल फजल की रचना 'अकबरनामा' और सल्तनत कालीन इतिहासकार अफीक की रचना 'शम्स–ए–सिराज' से होती है।[1] इस तरह से झारखण्ड का अपना स्वतंत्र वजूद और इतिहास रहा है। छोटानागपुर–संथाल परगना 1912 ई0 के पहले कभी भी बिहार–उड़ीसा का हिस्सा नहीं था। अंग्रेजों ने सर्व प्रथम झारखण्ड का नाम बदलकर बंगाल एक्ट 1833 के तहत बिहार, बंगाल, उड़ीसा तथा मध्यप्रदेश के जनजाति क्षेत्र को मिलाकर 'साउथ–वेस्ट फ्रंटियर एजेंसी' (South-West Frontier Agency) के नाम से अलग प्रांत बनाया था। इस प्रांत का उद्घाटन 15 जनवरी 1834 ई0 को किया गया। प्रांत की राजधानी लोहरदगा थी। बीस साल बाद 1854 ई0 में 'साउथ–वेस्ट फ्रंटियर एजेंसी' का नाम बदलकर छोटानागपुर रखा गया।[2]

छोटानागपुर और संथाल परगना क्षेत्र में ब्रिटिश शासन के शोषण, दमन और परंपरागत व्यवस्थाओं में हस्तक्षेप के खिलाफ अनेकों प्रतिरोध, विद्रोह और आंदोलन हुए हैं। लेकिन 20वीं शताब्दी के प्रांरभ में एक नए तत्व का समावेश हुआ, वह था अलग झारखण्ड राज्य की माँग। झारखण्ड राज्य की माँग केवल राजनीतिक स्वायत्तता के लिए नहीं बल्कि आर्थिक मुक्ति और सांस्कृतिक, सामाजिक, पुनर्जागरण एवं पुनर्गठन के उद्देश्य को लेकर हुई। भारत के ज्यादातर राज्यों के निर्माण के मूल में भाषा एक कारक के रूप में रहा है। लेकिन झारखण्ड राज्य की माँग यहाँ की समाज, संस्कृति एवं भाषा की अस्मिता और संरक्षण साथ ही स्थानीय जनता को शासन–प्रशासन, नीति निर्माण एवं निर्णय और रोजगार में अधिक से अधिक भागीदारी मिले इन मुद्दो को लेकर शुरू हुआ था।

झारखण्ड आंदोलन वर्गीय, जातीय और आर्थिक शोषण का राजनीतिक विस्फोट था। प्रजातीय एवं भौगोलिक परकिल्पना ने इसे नया स्वरूप दिया। इस आंदोलन की शुरूआत आदिवासियों ने जरूर की, परन्तु आंदोलन के स्वरूप निर्धारण में आदिवासियों के अलावा सदानों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही।[3] झारखण्डी समाज हमेशा से अपनी सांस्कृतिक धरोहर, पहचान और स्वतंत्रता को लेकर जागरूक रही है। अंग्रेजो के आने के बाद 1767 ई0 के विद्रोह से हम देख सकते हैं, लेकिन 1915 ई0 में धर्म एवं पंथों ने अलग झारखण्ड राज्य के आंदोलन की आधारभूमि तैयार की और आंदोलन को राजनीतिक स्वरूप प्रदान किया।[4]

झारखण्ड आंदोलन का शुरूआत 20वीं शदी के शुरूआती दशकों में हुआ लेकिन इस आंदोलन की आत्मा का इतिहास 1769 ई0 के आसपास से जुड़ा हुआ है। जब अंग्रेजों ने झारखण्ड में प्रवेश किया और यहाँ के परंपरागत शासन और भूमि व्यवस्था पर हस्तक्षेप करना शुरू किया। जिसके प्रतिक्रिया स्वरूप अनेक विद्रोह और आंदोलन हुए। झारखण्ड में शोषण के दो रूप सक्रिय रहे हैं। एक प्रांतीय शोषण और दूसरा वर्ग शोषण। झारखण्ड के संदर्भ में बिहार सहित परिश्चम बंगाल और उड़ीसा ने एक साथ झारखंडियों का प्रांतीय शोषण किया। झारखण्ड राज्य की माँग, जातीय संघर्ष और वर्ण संघर्ष के विरूद्ध एक सांस्कृतिक संघर्ष था तथा इन सब को सही परिप्रेक्ष्य में समायोजित करने पर एक वर्ग संघर्ष भी था। झारखण्ड में झारखण्डी जातीय पहचान को नष्ट–विनष्ट करने का एक व्यापक एवं वृहत षड्यंत्र चलता रहा। यहाँ की जातियों की भाषा, लिपि साहित्य, कला, संस्कृति को अन्य प्रांतों के लोगों ने आक्रांत किया। परिणामस्वरूप इनकी भाषाएँ पनप नहीं पाई, लिपियों को प्रतिष्ठित होने नहीं दिया गया। साहित्य को परवान चढ़ने नहीं दिया गया और इस प्रकार झारखण्डियों की जातीय पहचान को खत्म करने का प्रयास किया गया।[5] झारखण्ड बिहार का उपनिवेश बन गया था। एक उपनिवेश की पहचान यह है कि उस क्षेत्र का प्रशासन वहीं की जनता के हाथों में न होकर अन्य क्षेत्र के काबू में रहता है जिस तरह झारखण्ड अंचल का प्रशासन बिहार के लोगों के नियंत्रण में था। इसी कारण झारखण्ड की जनता ने भारत संघ के अंदर एक अलग राज्य के गठन और स्वायत्तता के अधिकार का सवाल उठाया था।[6] आदिवासी क्षेत्रों में बाहर से थोपा गया शासन व्यवस्था और हस्तक्षेत्र ने असंतोष और असहमति की लहरो को जन्म दिया। इसने आदिवासियों को अलग स्वायत्त राज्य के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी। झारखण्ड अलग राज्य की माँग का संबंध केवल बिहार राज्य से नहीं था बल्कि पड़ोसी राज्य पश्चिम बंगाल, उड़ीसा और मध्यप्रदेश के कई जिले इसमें शामिल थे।

बिहार और झारखण्ड की सांस्कृतिक, भाषाई रीति–रिवाज, आचार–व्यवहार, खान–पान, पर्व–त्योहार आदि मामलों में समानता नहीं थी। झारखण्ड के प्रशासनिक पदों पर झारखण्डी प्रतिनिधित्व ही सरकार और जनता के बीच एक अपनत्व के भाव को स्थापित कर पाता लेकिन झारखण्ड में अन्य राज्य के लोग प्रशासनिक सेवा में अधिक होने और यहाँ की वास्तविक एवं जमीनी सच्चाई से अनभिज्ञ होने के कारण समान्य जनमानस में सरकार और प्रशासन के प्रति विश्वास एवं सम्मान की कमी थी। स्वतंत्र भारत में भी झारखण्डियों को ऐसा महसूस होता रहा कि कोई उन पर बलपूर्वक शासन कर रहा है।[7] इसलिए झारखण्ड के लोगों में यह भावना जागृत हुई कि प्रशासनिक स्तर पर ऐसे लोगों को नियुक्त किया जाना चाहिए, जिन्हें झारखण्ड के लोगों के रहन–सहन या जीवनशैली के बारे में सम्यक ज्ञान हो।

आजादी के बाद भी झारखण्ड अपने खनिज संसाधनों एवं सस्ते श्रम के कारण आन्तरिक उपनिवेशवाद का शिकार रहा। औपनिवेशिकता विदेशी हो या देशी उसका चरित्र कमोवेश एक जैसा ही होता है। केन्या के प्रसिद्ध साहित्यकार न्गुगीवा थ्योंगो ने बड़े विस्तार से औपनिवेशिक संस्कृति का विश्लेषण करते हुए बताया कि शासित समूह की संस्कृति, भाषा, कला, इतिहास को नष्ट कर देना या जानबूझ कर उपेक्षा करना औपनिवेशिक शक्तियों का सांस्कृतिक हथियार है। यह सांस्कृतिक आक्रमण उपनिवेशों की जनता की संस्कृति के खिलाफ लम्बे समय तक जारी रहता है। न्गुगी की अवधारणाओं के परिप्रेक्ष्य में हम झारखण्ड के इतिहास–संस्कृति की उपेक्षा की नीति को आसानी से विश्लेषित कर सकते हैं।[8] किस तरह से झारखण्ड के इतिहास और संस्कृति को दबाकर यहाँ के अस्मिता एवं पहचान को घूमिल करने का प्रयास किया गया।

अपने जातीय रूप की खोज करना, अपनी जातीय संस्कृति की मूल्यवान विरासत को पहचानना और उस पर गर्व करना तथा अपनी जातीय संस्कृति के विकास के लिए अपने राष्ट्र को संगठित करने का संघर्ष चलाना–यह सब मानव–समाज के आधुनिक काल की मुख्य घटनाएँ है। यूरोपीय जातियों में इन आंदोलनों की शुरूआत 16वीं शताब्दी में पुनर्जागरण के साथ हुई जिनमें न केवल अपनी सांस्कृतिक विरासत में क्या अच्छा और क्या बुरा है– इसका मंथन हुआ, बल्कि बहुत सी नई वैचारिक क्रांतियाँ भी हुई। इस जातीय चेतना की राजनीतिक अभिव्यक्ति पश्चिमी यूरोपी में 19वीं शताब्दी में हुई जबकि पश्चिमी यूरोप की जातियों ने अपने राष्ट्रों को संगठिति किया, इटली के एकीकरण जैसे प्रश्न उभर कर आए और जातीय विकास में बाधक पुराने सामंतवाद को खत्म कर पूँजीवादी सभ्यता के आधार पर नई औद्योगिक एवं राजनीतिक व्यवस्था खड़ी की। अपेक्षाकृत पिछड़े हुए पूर्वी यूरोप तथा अफ्रीका और एशिया में जातीय पहचान और साम्राज्यवाद से तथा सामंती साम्राज्यों से जातीय मुक्ति के ये आंदोलन कुछ बाद में 1905 ई0 के आस–पास से शुरू हुए।[9] इसी तरह से अलग झारखण्ड राज्य के आंदोलन का शुरूआत भी जनजातियों के भाषा, संस्कृति, अस्मिता और अपनी शासन व्यवस्था को स्थापित करने को लेकर हुआ।

जब एकीकृत बंगाल था तो इसमें बिहार उड़ीसा तथा छोटानागपुर–संथालपरगना शामिल थे। 1912 में बिहार ने अपनी राजनीतिक पकड़ एवं पहुँच का लाभ उठाते हुए बिहार–उड़ीसा को बंगाल से अलग करा लिया और बाद में उड़ीसा के प्रभावशाली राजनेताओं ने 1936 ई0 में बिहार से अलग अपना उड़ीसा राज्य बना लिया किन्तु दुर्भाग्यवश झारखण्ड के भूगोल को ही नहीं बल्कि उनकी भाषा और संस्कृति को भी चार राज्यों (बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, मध्यप्रदेश) ने आपस में बांट लिया। इन सब राज्यों द्वारा झारखण्डी संस्कृति, अस्मिता एवं अस्तित्व पर प्रहार किया गया।[10] 1912 ई0 में बिहार तथा 1936 ई0 में उड़ीसा राज्य के गठन ने अलग झारखण्ड राज्य के विचार को आधार प्रदान किया। क्योंकि छोटानागपुर और उसके आस–पास के आदिवासी इलाके का प्राचीनकाल से झारखण्ड के नाम से एक पृथक राष्ट्रीय और भौगोलिक व्यक्तित्व रहा है। इसलिए इस इलाके के आदिवासियों ने अलग झारखण्ड प्रांत की मांग का आंदोलन चलाया।

झारखण्ड आंदोलन का जनक जे0 बार्थोलमन को माना जाता है। जे0 बार्थोलमन चाईबासा के निवासी थे जो एंग्लिकन मिशन से जुड़े थे। उन्होंने 1912 ई0 में ढाका विद्यार्थी परिषद् सम्मेलन से लौटने के बाद 'क्रिश्चियन स्टूडेंट्स ऑगैनाइजेशन' की स्थापना की थी। इस संगठन का प्रारंभिक उद्देश्य गरीब इसाई विद्यार्थियों को मदद करना था। बाद में यह संगठन छोटानागपुर के सभी आदिवासियों के सामाजिक–आर्थिक उत्थान में संलग्न हो गया। 1915 ई0 में एग्लिकन मिशन के विशप केनेडी की सलाह पर 'क्रिश्चियन स्टूडेंट्स आर्गेनाइजेशन' का नाम और संरचना में परिवर्तन करते हुए 'छोटानागपुर उन्नति समाज' नामक संगठन का स्थापना किया गया। इस संगठन का नेतृत्व जुएल लकड़ा, पॉल दयाल, बंदीराम उराँव ने किया। यह झारखण्ड का प्रथम अंतर्जातीय आदिवासी संगठन था तथा इसके सदस्य केवल आदिवासी ही हो सकते थे। इस संगठन की स्थापना का मूल उद्देश्य छोटानागपुर की प्रगति एवं आदिवासियों की सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक स्थिति में सुधार करना था। 'छोटानागपुर उन्नति समाज' के द्वाार आदिवासी समाज में जागरूकता और एकता को स्थापित करने के उद्देश्य से 'आदिवासी' नामक पत्रिका का प्रकाशन किया गया।''[11]

धीरे–धीरे आदिवासियों में राष्ट्र की भावना जागृत होने लगी और छोटानागपुर के मुंडा, उराँव, खड़िया, हो, कोल आदि जनजातियाँ

संगठित हुई। आदिवासियों ने अलग राज्य की माँग की जिसे एक संवैधानिक व्यवस्था के प्रश्न के रूप में देखा गया, लेकिन आंदोलन का मूल तो अपनी भाषा, संस्कृति और पहचान को बनाये रखना था क्योंकि आदिवासियों के भाषा को शिक्षा तथा काम–काज के माध्यम के रूप में प्रयोग नहीं किया जाता था। आदिवासी बच्चो को उड़ीसा में उड़िया, बिहार में हिन्दी और बंगाल में बंगाला भाषा में पढ़नी पड़ती थी। इस तरह से आदिवासी भाषाएँ राष्ट्र के बौद्धिक और सांस्कृतिक विकास में भूमिका नहीं रख पाती थी न ही वे आदिवासी राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधने का कार्य करती थी।[12] इन विषयों को ध्यान में रखते हुए झारखण्ड क्षेत्र के लिए एक अलग राज्य की माँग उन्नति समाज के मंच से औपचारिक तौर पर उस समय किया गया जब 1928 ई0 में 'साइमन कमीशन' ने इस क्षेत्र का दौरा किया था। उन्नति समाज ने विशप मॉन क्यूक और जुएल लकड़ा की अगुवाई में साइमन कमीशन को इस आशय का माँगपत्र दिया गया कि 'यहाँ के आदिवासियों को विशेष सुविधाएँ दी जाए तथा इनके लिए एक अलग प्रशासी–इकाई का सृजन किया जाए।[13] बाद में ठेबले उराँव और पॉल दयाल उन्नति समाज से अलग हो गए और किसानों की एक अलग पार्टी कायम कर ली। जिससे 'किसान सभा' नाम दिया गया। फिर 1933 ई0 में बोनिफेस लकड़ा के अध्यक्षता में 'छोटानागपुर कैथोलिक सभा' की स्थापना की गई। इस तरह से आदिवासी समाज विभिन्न संगठनों में बँटी हुई थी। आदिवासियों के स्थिति को देखते हुए इग्नेश बेक ने कहा– ''आदिवासियों का उद्धार तभी संभव होगा जब आदिवासियों में एकता होगी और आदिवासियों की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक उन्नति के लिए एक पृथक राज्य की स्थापना की जाएगी।[14] आदिवासियों में एकता स्थापित करने और संगठित होकर पृथक राज्य के लिए संघर्ष करने के उद्देश्य से 31 मई 1938 ई0 को राँची में छोटानागपुर उन्नति समाज की वार्षिक अधिवेशन में चार आदिवासी संगठनों–छोटनागपुर उन्नति समाज, किसान सभा, कैथोलिक सभा और मुण्डा सभा को मिलाकर एक एकीकृत आदिवासी संगठन बनाने का निर्णय किया गया। वस्तुतः छोटानागपुर उन्नति समाज का ही नाम संशोधित कर 'आदिवासी महासभा' कर दिया गया।[15] 20 जनवरी 1939 ई0 को राँची में आदिवासी महासभा की एक विशाल रैली में शोषण, उत्पीड़न, अपमान, अवहेलना और तिरस्कार के खिलाफ 'झारखण्डी ललकार' का उद्घोष हुआ और विभिन्न आदिवासी नेताओं की उपस्थिति में जयपाल सिंह मुण्डा को सर्वसम्मति से आदिवासी महासभा का अध्यक्ष चुन लिया गया। जयपाल सिंह के नेतृत्व में आदिवासी महासभा ने व्यापक जनचेतना जागृत की। बिहार की कांग्रेस सरकार द्वारा झारखण्डवासियों को गुलाम बनाकर उनका मालिक बनने की साजश का पर्दाफाश किया। उन्होंने आदिवासी महासभा के माध्यम से झारखण्ड की सांस्कृति अस्मिता, भौगोलिक अखंडता, आर्थिक संप्रभुता के प्रति आदिवासियों की चिरप्रतीक्षित जन आकांक्षाओं को राजनीतिक अभिव्यक्ति और शक्ति दी।[16]

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध पत्र से यह निष्कर्ष सामने आता है कि सैकड़ो वर्ष पूर्व भी छोटानागपुर, संथाल परगना क्षेत्र में स्वतंत्र राज्यों का अस्तित्व था। इस क्षेत्र के लोग अपनी प्रशासनिक स्वायत्तता और भाषा, संस्कृति की पहचान के मुद्दे पर जागरूक थे। इस शोध से यह भी स्पष्ट होता है कि समय के साथ कदमताल करते हुए झारखण्ड की जनता ने अपने हित और अधिकार को अभिव्यक्त करने वाली साधनों में भी सुधार किया और अगल झारखण्ड राज्य के आंदोलन को संवैधानिक, लोकतांत्रिक मूल्यों और प्रक्रियाओं से जोड़ा।

संदर्भ

1. डॉ० सिम्मी जावेद, 2021, झारखण्ड में सामाजिक आंदोलन, प्रिय साहित्य सदन, दिल्ली, पृ.सं. – 45
2. शैलेन्द्र महतो, 2015, झारखण्ड की समरगाथा, दानिश बुक्सा, दिल्ली, पृ.सं.–162
3. शत्रुघ्न कुमार पाण्डेय, 2018, झारखण्ड का इतिहास, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं.– 256
4. वही, पृ.सं. – 225
5. शैलेन्द्र महतो, पूर्वोद्धृत, पृ.सं. – 125
6. वही, पृ.सं. – 271
7. वही, पृ.सं. – 161
8. रणेन्द्र सुधीर पाल, 2019, झारखण्ड एन्साइक्लोपीडिया (खण्ड–1), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं. – 11
9. शैलेन्द्र महतो, पूर्वोद्धृत, पृ.सं. – 111
10. वही, पृ.सं. – 160
11. https://jaankarirakho.com/%E0%A4%9D%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A4%96%E0%A4%A3%E0%A5%8D%E0%A4%A1-%E0%A4%B0%E0%A4%BE%E0%A4%9C%E0%A5%8D%E0%A4%AF-%E0%A4%A8%E0%A4%BF%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%AE%E0%A4%BE%E0%A4%A3-%E0%A4%86%E0%A4%82%E0%A4%A6%E0%A5%8B%E0%A4%B2%E0%A4%A8 (21/10/2023)
12. वीर भारत तलवार, 2017, झारखण्ड आंदोलन के दस्तावेज, नवारूण, गाजियाबाद, पृ.सं. – 85
13. रणेन्द्र सुधीर पाल, पूर्वोद्धृत, पृ.सं. – 55
14. डॉ० बी वीरोत्तम, 2020, झारखण्ड : इतिहास एवं संस्कृतिक, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, पृ.सं. – 386
15. बलबीर दत्त, 2014, कहानी झारखण्ड आंदोलन की, क्राउन पब्लिकेशन्स, राँची, पृ.सं. – 14
16. शैलेन्द्र महतो, पूर्वोद्धृत, पृ.सं. – 168